International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 5; September 2018; Page No. 31-33

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा। 2.3.46 सूत्रस्थ 'परिमाण' शब्द के अर्थों का विचार

डॉ. निहारिका के पटेल

प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, एस. वी. आर्ट्स कॉलेज, अहमदाबाद, गुजरात, भारत।

प्रस्तावना

पाणिनि ने विभक्तिपाद (2.3.1 से 73) में अलग-अलग विभक्तियों का प्रयोग कब और कहाँ होता है ऐसा विधान किया है। इस विभक्तिपाद के प्रारम्भ में अनभिहिते । 2.3.1 ऐसा पद का अधिकार किया गया है । लेकिन यह अधिकार 'नक्षत्रे च लुपि' । 2.3.45 सूत्र में पूर्ण हो जाता है। उसके बाद प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा। 2.3.46 सूत्र से जो प्रथमा विभक्ति का विधान किया गया है वह प्रथमा विभक्ति कोई कारकविशेष का अर्थ अभिव्यक्त नहीं करती । इससे प्रथमा विभक्ति अकारक विभक्ति कहलायेगी। अथवा वार्त्तिककार के मतानुसार प्रथमा विभक्ति को 'अभिहिते प्रथमा' । अर्थात् 'अभिहित कारकविभक्ति' कहना चाहिए । इस प्रकार पाणिनीय तन्त्र में प्रथमा विभक्ति उद्देश्यवाचिका है।

उपर्युक्त प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा। 2.3.46 सूत्र का अर्थ इस प्रकार होता है। प्रातिपदिकार्थ मात्र में, लिङ्गमात्रा विषय मे, परिमाण मात्र में और संख्या मात्र में प्रथमा विभक्ति का उपयोग होता है। प्रातिपदिक अर्थात् नाम के अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। यथा – रामः। ज्ञानम्। नदी इत्यादि। यहाँ 'राम' ऐसे प्रातिपदिक (नाम) को प्रथमा विभक्ति का 'सु' प्रत्यय लगाया गया है। इस प्रत्यय को लगाने के साथ ही वह प्रातिपदिक (नाम) का निश्चित अर्थ प्राप्त हो सकता है अर्थात् अभिव्यक्त होता है [1]।

पाणिनि ने 'प्रातिपदिक' की व्याख्या इस प्रकार दी है। 'अर्थवद् अधातुः अप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' । 1.2.46 अर्थात् "धातुभिन्न, प्रत्ययभिन्न और प्रत्ययान्तभिन्न ऐसा अर्थवान् शब्दस्वरूप को प्रातिपदिक कहते हैं"। साथ ही कृत्तद्धितसमासाश्च । 1.2.47 अर्थात् कृत् प्रत्ययान्त शब्द, तद्धित प्रत्ययान्त शब्द और सामासिक शब्द को ही प्रातिपदिक कहते हैं। ऐसे प्रातिपदिकों के अर्थ के लिए प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है [2]।

यहाँ यह विचारणीय है कि प्रातिपदिक में से कौन सा अर्थ प्राप्त होता है कोई प्रातिपदिक का श्रवण होने के साथ ही उसके अधिक से अधिक पांच अर्थों की प्राप्ति होती है।

1. प्रातिपदिक का प्रवृत्तिनिमित्त (जाति),
2. प्रातिपदिक का प्रवृत्तिनिमित्त और व्यक्ति,
3. प्रातिपदिक का प्रवृत्तिनिमित्त, व्यक्ति और लिङ्ग,
4. प्रातिपदिक का प्रवृत्तिनिमित्त, व्यक्ति, लिङ्ग और संख्या और
5. प्रातिपदिक का प्रवृत्तिनिमित्त, व्यक्ति, लिङ्ग, संख्या और कारक।

परन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में प्रथम दो अर्थों का ही प्रातिपदिक के अर्थ के रूप में स्वीकार होगा। क्योंकि सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में प्रातिपदिकार्थ से स्वतन्त्र लिङ्ग और संख्या का भी उल्लेख किया है। इसलिए सूत्रकार के मन में प्रातिपदिक का अर्थ ज्ञाति और व्यक्ति – यह दो ही होंगे। भाषा में अमुक प्रकार के शब्द ऐसे हैं कि जिसमें से लिङ्ग और संख्या का बोध नहीं होता। ऐसे – अव्यय – शब्दों को जब प्रथमा विभक्ति लगायी जाति है तब वहाँ केवल जाति और व्यक्ति का बोध होता है। भाषा में कुछ ऐसे शब्द होते हैं जिनके लिङ्ग निश्चित होते हैं । यथा – 'राम' शब्द का लिङ्ग हंमेशा पुल्लिङ्ग होगा, 'ज्ञान' शब्द का लिङ्ग नित्य नपुंसकलिङ्ग होगा। ऐसे शब्दों को जब प्रथमा विभक्ति लगती है तब वहाँ भी पूर्वोक्त दो प्रातिपदिकार्थ का ही बोध होता है। इस प्रकार प्रातिपदिकार्थों का बोध करवाने वाली प्रथमा विभक्ति के उदाहरणों से दो प्रकार के शब्द बनते हैं

1. बिना लिङ्ग के शब्द, यथा – उच्चैः। नीचैः।
2. नियतलिङ्ग वाले शब्द, यथा – कृष्णः। श्रीः। ज्ञानम् इत्यादि।

बालमनोरमा का आलोचना ग्रन्थ तत्त्वबोधिनी में ज्ञानेन्द्र सरस्वती ने प्रातिपदिक के पाँच अर्थ बताये हैं। 'स्वार्थद्रव्यलिङ्गसंख्याकारकात्मकः पञ्चकं प्रातिपदिकार्थः' [3]। अर्थात् स्वार्थ - धर्म, ज्ञाति, प्रवृत्तिनिमित्त, द्रव्य – धर्मी, व्यक्ति, लिङ्ग, संख्या और कारक। आचार्य कैयट ने अपने समीक्षाग्रन्थ 'प्रदीप' में प्रातिपदिक के चार अर्थ दिए हैं [4]। अन्य समीक्षक दो अर्थ देते हैं।

जब कोई शब्द में से उसके लिङ्गमात्र का आधिक्य बताता हो तब भी प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। यथा – तट। ऐसे शब्दों को जब प्रथमा विभक्ति लगायी जाती है तब वह शब्द किस लिङ्ग के अन्तर्गत आया है वह स्पष्ट होता है। जैसे – 'तटः' हो तो वह पुल्लिङ्ग का वाचक बनता है, 'तटी' हो तो वह स्त्रीलिङ्ग का वाचक बनता है और 'तटम्' हो तो नपुंसकलिङ्ग का वाचक होता है। इस प्रकार ऐसे शब्दों को जो प्रथमा विभक्ति के प्रत्यय लगते हैं वह विशेषतः अमुक लिङ्गरूपी अर्थ व्यक्त करते हैं।

वचन अर्थात् संख्यारूपी अर्थ सूचित करने के लिए ही प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे – 'एकः; 'द्वौ' इत्यादि। यहाँ एक, द्वि जैसे शब्दों के पीछे प्रथमा विभक्ति के प्रत्यय लगे हैं उससे एकः, द्वौ संख्याओं का बोध होता है। यहाँ कि एक, द्वि आदि शब्द संख्यावाचक है। इसलिए संख्यारूपी अर्थ व्यक्त करने के लिए कोई नये प्रत्ययांश की जरूरत नहीं होती। तथापि यदि प्रत्यय नहीं लगाया जाए तो उस शब्द का 'पदत्व' सिद्ध नहीं होगा। भाष्यकार ने कहा है कि 'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, नापि प्रत्ययः' [5]।

यहाँ प्रश्न उपस्थित होगा कि एकबार प्रकृति से ही संख्यारूपी अर्थ स्पष्ट हो जाने के बाद उसी अर्थ को कहने के लिए प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किस

प्रकार किया जा सकता है ? कारण के उक्तार्थानाम् अप्रयोगः । अर्थात् एकबार जो अर्थ स्पष्ट हो गया हो उसे दूसरे रूप से नहीं कहा जा सकता । - ऐसा न्याय है । इस शङ्का का समाधान यह है कि एकबार प्रकृति से जो संख्यारूपी अर्थ कहा जाए वही अर्थ प्रत्यय से अनु – वाद (पुनः कथन) किया जायेगा ।

परिमाण यानी एक स्वतन्त्र मापक पदार्थ । परिमाण का दूसरा अर्थ 'माप' भी होता है । यह 'माप' अर्थ कहने के लिए प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है । यथा – 'द्रोणा व्रीहिः' । यहाँ 'द्रोण' शब्द के पीछे जो प्रथमा विभक्ति लगी है वह परिमाण अर्थ व्यञ्जित करती है । 'द्रोण' यानी एक 'पात्रविशेष' और 'द्रोणः' में प्रथमा विभक्ति का 'सु' प्रत्यय का अर्थ 'परिमाण' (माप) होता है । इस प्रकार 'द्रोणः' यानी अमुक पात्र जितना माप । यहाँ 'द्रोण' में अर्थात् 'अमुक पात्र' प्रकृति है । यह प्रकृत्यर्थ माप ऐसे प्रत्यय के अर्थ में विशेषण बन जाते हैं । अर्थात् 'द्रोण' = प्रकृति का अर्थ विशेषण है और 'सु' प्रत्यय का अर्थ विशेष्य है । अब इस प्रकृति के अर्थ से विशिष्ट ऐसी प्रथमा विभक्ति का 'सु' प्रत्यय का अर्थ, व्रीहि शब्द का विशेषण बनता है । यानी कि, अमुक पात्र के द्वारा मापा हुआ 'व्रीहि' । यहाँ इस 'द्रोण' प्रकृति का अर्थ अभेदसम्बन्ध से प्रत्ययार्थ 'परिमाण' में विशेषण बनेगा । और फिर प्रकृत्यर्थ से विशिष्ट ऐसा यह प्रत्ययार्थ परिच्छेद्य – परिच्छेदक भाव सम्बन्ध से 'व्रीहि' में विशेषण बनेगा । यहाँ 'द्रोण' – परिच्छेदक अर्थात् मापने वाला और 'व्रीहि' – परिच्छेद्य अर्थात् जिसे मापा गया है – वह है ।

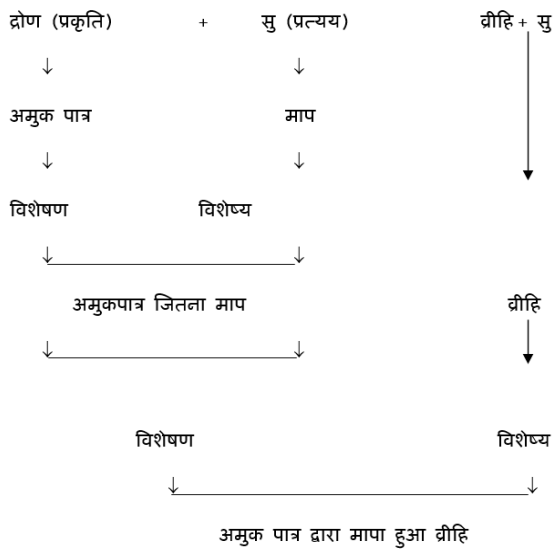

यहाँ 'द्रोण' शब्द को लगी प्रथमा विभक्ति 'परिमाण' (माप) अर्थ को व्यक्त करती है, यह फलित होता है । 'व्रीहि' की प्रथमा विभक्ति प्रातिपदिकार्थ सूचित करती है ।

भाषा में दो प्रकार के वाक्य दृष्टिगोचर होते हैं – (1) द्रोणो व्रीहिः । और (2) सिंहो माणवकः, शुक्लः परः इत्यादि । यहाँ प्रथम प्रकार के वाक्य में विशुद्ध 'परिमाण' अर्थ का उदाहरण है, जबकि दूसरे प्रकार के वाक्यों में सादृश्यमूलक उपचरित अर्थों का निरूपण हुआ है ऐसे उदाहरण है ।

सूत्रकार पाणिनि और भाष्यकार पतञ्जलि 'परिमाण' का अर्थ 'परिमाण' ही मानते हैं । पतञ्जलि अपने भाष्य में केवल द्रोणः, खारी, आढकम् – जैसे उदाहरण देते हैं । उनके मतानुसार 'द्रोण' शब्द की प्रथमा विभक्ति परिमाण अर्थ सूचित करती है [6] । 11वीं शताब्दी में हुए कैयट अपने आलोचना ग्रन्थ उद्योत में बताते हैं कि भाष्यकार को यहाँ भाष्यव्याख्या करने की आवश्यकता थी । फिर भी वे उनका बचाव करते हुए कहते हैं कि सूत्रकार और भाष्यकार के समक्ष 'सिंहो माणवकः' जैसे उदाहरण नहीं होंगे ऐसा कहना उचित नहीं है । कैयट आगे बताते हैं कि भाष्यकार के उदाहरण देखकर टीकाकारों ने ध्वनित किया है कि द्रोणः, खारी, आढकम् शब्द व्रीहि का उपलक्षण हैं [7] । जबकि सातवीं शताब्दी में हो गये न्यासकार के समक्ष 'सिंहो माणवकः', 'शुक्लः पटः, जैसे उदाहरण थे इसलिए उन्होंने 'परिमाण' का अर्थ 'उपचार' (लक्षणाजन्य) किया है । 'शुक्लः पटः' जैसे उदाहरण में 'शुक्ल' शब्द 'शुक्लत्व गुण' का वाचक है और लक्षणा से गुणी (पट) का वाचक बनता है । इस प्रकार वैयाकरणों ने लक्षणा-शक्ति का स्वीकार नहीं किया है । सभी लक्ष्यार्थ प्रथमा विभक्ति के प्रत्यय से ही व्यक्त हो जाता है । और इस प्रकार उन्होंने सूत्र में आये हुए परिमाण शब्द को तमाम उपचारित अर्थ का उपलक्षण बताया है [8] ।

"भाष्यकार के समय में भी सूत्र में, आया हुआ 'परिमाण' शब्द केवल 'परिमाण' अर्थ ही स्पष्ट करता था और 'परिमाण' शब्द अन्य उपचरित अर्थों को ध्वनित नहीं करता था" – इस मत को नागेश नहीं मानते हैं । नागेश का स्पष्ट मानना था कि भाष्यकार ने 'अथ परिमाणग्रहणं किमर्थम् ?' ऐसा प्रश्न उपस्थित करके द्रोणः, खारी, आढकम् इत्यत्रापि यथा स्यात् । ऐसा जो कहा है उसमें 'उपचरित' अर्थों की अनुपस्थिति है ऐसा नहीं मानना चाहिए । क्योंकि सूत्रकार और भाष्यकार को 'सिंहो माणवकः' जैसे सादृश्यमूलक उपचरित अर्थवाले उदाहरण की जानकारी नहीं थी यह कल्पनातीत है [9] । नागेश ऐसा मानते हैं की सूत्रकार के समय से ही 'सिंहो माणवक' जैसे प्रयोग प्रचलित थे । परन्तु इन सभी उपचरित अर्थों को अलग न करते हुए सूत्रकार ने केवल उपलक्षण के रूप में 'परिमाण' शब्द का स्वीकार किया है ।

तदुपरान्त नागेश ने भाष्यकार का बचाव करते हुए उद्योत में ऐसा भी कहा है कि "यदा यो नियतोपस्थितिकः स तदा प्रातिपदिकार्थ इति स्वीकृत्य तदकरणस्यैव न्याय्यत्वं च" [10] । अर्थात् भाष्यकार ने अन्यत्र कहा है कि किसी भी शब्द के उचचारण से श्रोता के मन में जिस अर्थ की प्रतीति हो वही 'नियतोपस्थितिक' सभी अर्थ प्रातिपदिकार्थ रूप में ही ग्रहण करना चाहिए । ऐसा जो महासिद्धान्त भाष्यकार ने कहा है इसके पश्चात् इस सूत्र की व्याख्या के वक्त 'परिमाण' शब्द का अर्थ अन्य 'उपचरित' अर्थ ही लेना चाहिए– ऐसा उन्हें कहने की आवश्यकता नहीं रहती । इसलिए उपर्युक्त जो दो भाष्यवाक्य उद्धृत किया गया है वहाँ 'परिमाण' शब्द से अन्य उपचरित अर्थ लेना चाहिए । ऐसा कहने की आवश्यकता नहीं है ।

इस प्रकार सूत्रकार, भाष्यकार और कैयट के समयपर्यन्त परिमाण का अर्थ 'परिमाण' ही लिया जाता था । परन्तु नवमी शताब्दी के बाद 'परिमाण' उपचरित अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगे । बारहवीं [12] शताब्दी में हुए हेमचन्द्राचार्य ने 'परिमाण' शब्द को ध्यान में नहीं लिया ।

J. S. Speijer नामक विद्वान् ने प्रस्तुत सूत्र का अर्थ अन्य तरह से किया है – 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचन मात्रे प्रथमा' । यह षष्ठी तत्पुरुष समास है । उसका अर्थ प्रातिपदकस्य ये लिङ्गपरिमाणे (ये लिङ्गसंख्ये और ये लिङ्गवचने) तयोः वचनमात्रे प्रथमा (स्यात्) [11] ॥ अर्थात् प्रातिपदिक में उपस्थित 'लिङ्ग' और 'परिमाण' (संख्या) अर्थ अभिव्यक्त करने के लिए

प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। यहाँ 'परिमाण' का अर्थ संख्या किया गया है और 'वचन' यानी 'अभिव्यक्त करने वाला' ऐसा समझना चाहिए। डॉ. एस. डी. जोषी भी इस अर्थघटन का स्वीकार करते हैं।

उपसंहार

इस समग्र चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रथमा विभक्ति के अर्थ को दिखलाते वक्त सूत्रकार ने 'परिमाण' शब्द का जो अर्थ किया है वह भाष्यकार के समय तक परिमाण अर्थ को ही अभिव्यक्त कर रहा था।

कैयट ने इस नयी व्याख्या का स्वीकार नहीं किया है। इसलिए सत्रहवीँ शताब्दी में हो गए नागेश भट्ट ने भी कैयट और भाष्यकार दोनों का बचाव किया है। और कहा है कि सूत्रकार या भाष्यकार 'सिंहो माणवकः' जैसे उदाहरण से परिचित नहीं थे ऐसा नहीं माना जा सकता। वास्तविकता यह है कि नागेश के द्वारा प्रस्तुत बचाव पक्ष ही इस बात का प्रमाण बन जाता है कि सूत्रकार या भाष्यकार को उपचरित अर्थों का ज्ञान नहीं था।

टिप्पणी

1. संस्कृत भाषा में नियम है कि सिर्फ प्रकृति या प्रत्यय का प्रयोग नहीं होता। दूसरे शब्द में प्रत्यय के बिना प्रातिपदिक से कोई अर्थ प्राप्त नहीं होता। राम शब्द से प्रत्यय लगाने के पश्चात् ही अर्थ अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार प्रातिपदिकार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है।
2. वैयाकरणसिद्धान्तकौमदी (श्रीभट्टोजीदीक्षितविरचिता) पूर्वार्द्धम् – भारतीय बुक कोर्पोरेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण – 1997, पृ. 300
3. श्रीमद्भट्टोजीदीक्षितविरचिता वैयाकरणसिद्धान्तकौमदी, (बालमनोरमाव्याख्ययातत्त्वबोधिन्याख्यया च सनाथिता) – मोतीलाल बनारसीदास, 1975 पृ. 567
4. श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचितं व्याकरणमहाभाष्यम् (प्रदीपोद्योतटीका सहितम्) द्वितीयोध्यायः, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, – 1938, पृ. 299
5. श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचितं व्याकरणमहाभाष्यम् (प्रदीपोद्योतटीका सहितम्) सम्पादक – श्रीगुरु प्रसाद शास्त्री, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 258
6. सूत्रभाष्यकृतोः 'सिंहो माणवकः' इत्यादेरज्ञानकल्पना चाधिका। व्याकरण महाभाष्यम्, पृ. 302
7. तदेव – पृ. 302
8. परिमाणग्रहणञ्च यत्र निमित्तादर्थान्तरे सोयमित्यभेदसम्बन्धात् शब्दः प्रवर्तते, तदुपलक्षणार्थं वेदितव्यम्।
   - श्रीमद्वामन-जयादित्यविरचिता काशिकावृत्तिः (न्यासपदमञ्जरीव्याख्यया च सहिता), द्वितीयोभागः, प्राच्यभारती प्रकाशनम्, वाराणसी, 1965, पृ. 204
   - गोर्वाहीक इतिपद् द्रोणशब्दस्य तत्परिमिते उपचाराद् द्रोणो व्रीहिरित्यपि सिद्धमिते मनोरमायाम्। श्रीमद्भट्टोजीदीक्षितविरचिता वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी – (बालमनोरमातत्त्वबोधिन्याख्याख्यया च सनाथिता), मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1975, पृ. 596
9. सूत्रभाष्यकृतो 'सिंहो माणवकः' इत्यादेरज्ञानकल्पना चाधिका। - व्याकरणमहाभाष्यम्, पृ. 302
10. तदेव – पृ. 302
11. Sanskrit Syntax (Reprint) – Motilal Banarasidas, Delhe, 1980, PP. 26-27

सन्दर्भ

1. श्रीमद्भट्टोजीदीक्षितविरचिता वैयाकरणसिद्धान्तकौमदी, पूर्वार्द्धम् – प्रथम संस्करण – 1997, भारतीय बुक कोर्पोरेशन, दिल्ली, पृ. 300
2. श्रीमद्भट्टोजीदीक्षितविरचिता वैयाकरणसिद्धान्तकौमदी, (बालमनोरमातत्त्वबोधिन्याख्यया च सनाथिता) – मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 567
3. श्रीमद्वामन-जयादित्यविरचिता काशिकावृत्तिः (न्यासपदमञ्जरीव्याख्यया च सहिता) – 1965 द्वितीयो भाग, प्राच्यभारती प्रकाशनम्, वाराणसी, पृ. 204
4. श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचितं व्याकरणमहाभाष्यम् (प्रदीपोद्योतटीका सहितम्) – 1938, द्वितीयोध्यायः, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 299
5. Sanskrit Syntax (Reprint) – 1980, Motilal Banarasidas, Delhe, PP. 26-27